अनौपचारिक शिक्षा का सही स्वरूप

❑ डॉ. हेतु भारद्वाज

शिक्षा में स्तरभेद एक पुरानी बात है लेकिन जब किसी कारण स्कूल न जा सकने वाले और कामकाजी बच्चों के लिए अनौपचारिक शिक्षा का प्रावधान किया गया तो स्तरभेद की बहस और तीखी हुई । विशेष बात यह थी कि अनौपचारिक शिक्षा को शिक्षा के सार्वजनीकरण से सम्बद्ध किया गया और जे.पी. नाइक जैसे शिक्षाविदों ने अनौपचारिक शिक्षा का खासा पक्ष-पोषण किया। उसके लिए एक मुकम्मिल दर्शन गढ़ने का प्रयास किया गया। ऐसे ही एक प्रयास पर इस समीक्षा में टिप्पणी की जा रही है । अब अनौपचारिक शिक्षा अनेक नाम-रूप धारण कर फैलती जा रही है ।

दयालचन्द्र सोनी राजस्थान के ऐसे शिक्षाविद्रों में हैं जो अपनी युवावस्था से ही शिक्षा से जुड़े हैं तथा शिक्षा के क्षेत्र में चिंतन करते रहे हैं । उन्होंने बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग कर गांधीवाद में आस्था प्रकट की तो राजस्थान में साक्षरता अभियान को गति प्रदान करने में सक्रियता दिखायी । समय समय पर वे अपने शिक्षा संबंधी अनुभवों को लिपिबद्ध करते रहे हैं ।

' अनौपचारिक शिक्षा का सही स्वरूप' नामक प्रस्तुत कृति का महत्व तो इसी बात से प्रतिपादित हो जाता है कि 1990 में इसका प्रथम संस्करण छपा था जबकि दूसरा संस्करण 1998 में छपा है । निश्चय ही पाठक वर्ग में इसकी मांग रही होगी । वे अपने शिक्षा प्रयोगों के सिलसिले में विदेश यात्रा भी कर चुके हैं ।

दयालचन्द सोनी की प्रस्तुत कृति अनौपचारिक शिक्षा के शास्त्रीय और दार्शनिक पक्ष की विस्तृत व्याख्या करती है । अनौपचारिक शिक्षा का जो भी शास्त्र और विधान सोनी जी प्रस्तुत करते हैं उससे शायद ही किसी को एतराज हो क्योंकि मानव जीवन में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया निरन्तर प्रवहमान है । हर क्षण हम कुछ नया और उपयोगी सीख सकते हैं बशर्ते हम सीखने के लिए तत्पर हों ; इसलिए सोनी जी अनौपचारिक शिक्षा का जो ताना-बाना बुनते हैं वह बहुत व्यापक है ।

शिक्षा को लेकर उनकी चिन्ताएं बड़ी व्यावहारिक हैं । एक और वे समाज के विकास के लिए शिक्षा की अनिवार्यता तथा प्रासंगिकता पर गहराई से विचार करते हैं तथा ज्ञान और कर्म के अन्त: संबंधों की जरूरत को रेखांकित करते हैं । साथ ही वे आयातित विचारों के दुष्प्रभाव से प्रदूषित भारतीय शिक्षा की वर्तमान दयनीय स्थिति से दुखी होते हैं । आज से नहीं, स्वतंत्रता मिलने से पूर्व से ही हम पश्चिमी शिक्षा प्रणाली (मैकॉलेवादी) की तीव्र भर्त्सना करते आ रहे हैं और उसके दुष्प्रभावों का रोना रोते आ रहे हैं । ये दो ध्रुव हैं ; सैद्धांतिक स्तर पर जिस शिक्षा प्रणाली की तीव्र आलोचना, व्यावहारिक स्तर पर उसी को अपनाते जाने की तेज ललक ! कभी ऐसा क्यों नहीं ? हुआ कि हम इस शिक्षा प्रणाली के गुणों की चर्चा करते और उन्हें ग्रहण करने की प्रक्रिया को तेज करते और उसके दुष्प्रभावों तथा दुर्गुणों को चिन्हित कर उनके त्याग का अभियान चलाते । हम आज भी अतिवादी हैं, इसका कारण यही रहा कि हम गांधी जी के विचारों का जो लाभ पा सकते थे, उसे पाने के लिए हम गांधीवादी बने रहे वर्ना व्यवहार में पूरी तरह पश्चिमी थे । ऐसी दुविधा भरी स्थिति में शिक्षा का मौलिक ढांचा कैसे पनप सकता था ?

इस कृति में सोनी जी अनौपचारिक शिक्षा के संदर्भ में उन सभी आदर्शों, मूल्यों, सिद्धांतों की चर्चा करते हैं जो उन्होंने अपने प्राचीन धर्म-ग्रथों से ग्रहण किए हैं । वे अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था ही इस तरह करते हैं कि 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' प्रत्यय अनौपचारिक शिक्षा के आधार हैं । यह देखकर आश्चर्य होता है कि वे 'सांदीपनि सिद्धांत' को औपचारिक सिद्धांत के अर्न्तगत रखते हैं और 'द्रोण सिद्धांत को औपचारिक शिक्षा के अन्तर्गत । जबकि प्राचीन शिक्षा पद्धति में इस प्रकार का कोई विभाजन नहीं मिलता । प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का आधार तो यही सिद्धांत था कि गुरुकुल में पढ़ने वाले सभी विद्यार्थियों को सारे कार्य परस्पर सहयोग से संपन्न करने पड़ते थे ।

'अनौपचारिक शिक्षा के मानवीय लक्ष्य' प्रकरण में सोनी जी जिन लक्ष्यों से अनौपारिक शिक्षा को जोड़ते हैं वे किसी भी प्रकार की शिक्षा के लक्ष्य हो सकते हैं - सजगता, सहजीवन, स्वावलंबन, 'संपन्नता, सौंदर्य, सत्संग, सत्य-पालन और सत्याग्रह आदि उदात्त लक्ष्य क्या किसी औपचारिक शिक्षा के लक्ष्य नहीं होंगे ? अथवा क्या ऐसी किसी शिक्षा-पद्धति की संकल्पना की जा सकती है

जिसके लिए इन मूल्यों का कोई अर्थ न हो ? फिर सोनी जी इन सभी लक्ष्यों का विश्लेषण बड़े दार्शनिक और शास्त्रीय अंदाज में करते हैं - इस विश्लेषण के प्रति किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती पर इन उदात्त लक्ष्यों को प्राप्त करने की कोई ठोस कार्य योजना सोनी जी के पास नहीं है । इस तरह के अभियान असफल भी शायद इसीलिए होते हैं कि हम लक्ष्य तो बहुत ऊंचे ऊंचे निर्धारित कर लेते हैं पर उनके अनुरूप कार्य - योजना हमारे पास नहीं होती । इसलिए व्यावहारिक स्तर पर इनकी सार्थकता का मूल्यांकन ही नहीं हो पाता।

निश्चय ही दयालचंद सोनी एक आदर्शवादी शिक्षाविद् हैं जिनके पास शिक्षा के संदर्भ में उदात्त विचारों का जखीरा है, वे अपनी बात पूरे विस्तार के साथ प्रस्तुत करते हैं । अनौपचारिक शिक्षा में शिक्षक तथा शिक्षक-शिक्षा प्रकरण में वे शिक्षक के गुणों की चर्चा करते हैं तथा शिक्षकों के लिए अपनी एक आचार संहिता भी प्रस्तावित करते हैं किन्तु प्रश्न यह है कि इस सारे विमर्श में नया क्या है ? फिर आज के इस युग में क्या यह सम्भव है कि शिक्षक पूरे छात्रों का समग्र शिक्षक होगा न कि अपने विशिष्ट विषय का अध्यापक मात्र होगा । काल्पनिक स्तर पर ऐसे शिक्षक का रूप काफी आकर्षक लगता है किन्तु रोजाना बदलती जीवन स्थितियों में क्या हम ऐसे व्यक्ति का निर्माण कर सकते हैं जो छात्र को सब कुछ दे सके ? सोनी जी अनौपचारिक शिक्षा को सामान्य शिक्षा से अलग करते है, ''औपचारिक शिक्षा तो शिक्षा को केवल जीवन की तैयारी का अवसर मानती है, पर अनौपचारिक शिक्षा में शिक्षा को जीवन तथा जीने की कला के रूप में माना जाता है। जीवन स्वयं शिक्षा है ।'' यह अवधारणा भी इसलिए विचित्र किस्म की लगती है कि बड़े बड़े शिक्षाविद सदा से ही जीवन को सतत शिक्षा का आधार मानते हैं तथा यह भी कि शिक्षा जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है । फिर अनौचारिक शिक्षा के बारे में इस परम्परागत अवधारणा का क्या अर्थ है ?

इस कृति को पढ़ने पर लगता है कि सोनी जी अनौपचारिक शिक्षा का एक शास्त्र गढ़ने का प्रयास कर रहे हैं - एक ऐसा शास्त्र जो शिक्षा के मामले में न केवल 'नानापुराण निगमागम सम्मत' हो बल्कि अपने आप में इतना अप्रतिम हो कि इससे आगे और पीछे कुछ भी न हो । इसलिए अनौपचारिक शिक्षा संबंधी उनके उपादान बहुत अमूर्त और व्यापक हैं - वे विराट और विशिष्ट पाठ्यक्रम की बात उठाते हैं, शिक्षा में अनन्तता की अवधारणा को रेखांकित करते हैं, शिक्षा एवं निजधर्म की पहचान जैसे प्रत्यय पर विचार करते हैं तथा शिक्षा द्वारा आत्मवत भावना तथा आत्मवत व्यवहार के द्वारा समाज परिवर्तन की आवश्यकता पर बल देते हैं किन्तु उनकी दृष्टि में यह सब इतना गूढ़, रहस्यमय तथा दुर्बोध है कि इसे समझना बिरलों के ही बस का हो सकता है जैसे इसे पढ़ें तथा उसे समझने का प्रयास करें । 'अनौपचारिक शिक्षा के विषय चक्र की प्रतीकात्मक या लाक्षणिक संकल्पना है, सृष्टि का विराट कर्मचक्र पहिये के बाहरी चलचक्र के रूप में, व्यक्ति तथा व्यक्तिगत प्रेरणाएं भीतरी नाभिचक्र के रूप में; वाणी और अंकाक्षरी विद्या, प्रकृति तथा पहिये के चार आरों के रूप में । जब अनौपचारिक शिक्षा ऐसी है तो औपचारिक शिक्षा कैसे होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है । इस प्रकार के अमूर्तन से न शिक्षा का भला हो सकता है न जीवन का क्योंकि ऐसी बडी-बडी तथा अबूझ बातें हमें किसी ठोस निष्कर्ष तक नहीं ले जाती । कर्म शिक्षा, वाणी शिक्षा, प्रकृतिगत शिक्षण, समाजगत शिक्षण, आत्मगत शिक्षण आदि प्रकरणों में ऐसी ही अमूर्त अवधारणाओं की चर्चा सोनी जी ने की है ।

व्यावहारिक दृष्टि से इस कृति का कोई महत्व मेरी दृष्टि में नही है किन्तु सोनी जी ने इस कृति में आदर्शवादी सुभाषितों का अच्छा संचयन किया है -

- आज विश्व जो कुछ भी है, वह आज ही के मनुष्यों की कृति नहीं है ।

- समय के गर्भ से ही सभी भाव या विचार या कर्म प्रस्तुत होते हैं और समय ही यथा समय उन भावों या विचारों या कर्मों का फल प्रदान करता है ।

- शिक्षा में कुशिक्षा की छूट नहीं है, यह सत्य होते हुए भी कुशिक्षा के लिए क्षमा अवश्य है ।

- जहां मनुष्य को श्रेय (अथवा आत्म संशोधन रूपी कल्याण) की ओर बढ़ना है वहां प्रेय (प्रिय लगने वाली सांसारिक प्रवृत्तियों) से घृणा नहीं करनी है ।

- मनुष्य का जीवन उसकी आयु में निहित है और मनुष्य की आयु समय (अथवा काल) में निहित है ।

ऐसे सुभाषितों से यह कृति भरी पड़ी है, पर जब हम शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष की दृष्टि से इनकी उपादेयता पर विचार करते हैं तो इनका महत्व संदिग्ध हो जाता है । कई जगह तो पुस्तक इतनी उपदेशात्मक हो गयी है कि वह धर्मग्रंथ का सा आभास देने लगती है - ''हम तमोगुणी अकर्मण्यता से निकलकर रजोगुणी कर्मण्यता तक तो पहुंचे, पर हम सत्वगुणी धर्मण्यता पर नहीं पहुंचे ।'' या ''ईश्वर भी आजाद नहीं है क्योंकि सृष्टि की रचना कर लेने के बाद वह स्वंय भी कर्तव्य से बंधा हुआ है ।'' सोनी जी की अनौपचारिक शिक्षा कितनी गूढ़ और अमूर्त है, इन वाक्यों से सहज ही पता चल जाता है । ◆